श्रीमद्भगवद् गीता में कर्मवाद की अवधारणा

* पूजा सिंह

सुव्यवस्थित मानव जीवन के लिए कर्म सबसे पहली सीढ़ी है, जो इस सीढ़ी पर पैर नहीं रखता वह एक ही स्थान पर स्थिर और दुःख का भोगकारी हो जाता है। कर्म की उपयोगिता एक व्यक्ति से लेकर समूचे राष्ट्र तक को होती है। मानव विकास हो या राष्ट्र का विकास हो, कर्म ही एक मात्र विकास का आधार है। प्राचीन काल से ही वैदिक, साहित्यिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों के माध्यम से कर्मयोग की प्रेरणा प्रदान की जा रही है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कर्मयोग की उपयोगिता अद्वितीय है। कर्मयोग व्यक्ति के साथ–साथ समाज को भी उच्च शिखर तक पहुँचा देता है। व्यक्ति यदि कर्मयोगी है अर्थात् कर्मपरायण व्यक्ति कर्मयोग के आचरण को यदि अपने व्यवहार में उतार ले तो वह आचारवान् होने के साथ–साथ वहाँ का परिवेश अर्थात् समाज भी अच्छे आचारों–विचारों वाला हो जाता है। आधुनिक युग में कर्मयोग का श्रेष्ठ ग्रन्थ भगवान श्रीकृष्ण की वाणी से अलङ्कृत श्रीमद्भगवद्गीता है। इसमें कर्मयोग का महत्त्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। गीता में जो कर्मयोगी के गुण[1] बताए गये हैं, यदि उनको धारण कर लिया जाय तो अकर्मण्यता, हिंसा, चोरी, प्रमाद आदि सभी अवगुण नष्ट होकर एक स्वच्छ, पवित्र और सबल समाज का निर्माण हो सकता है।

कर्म मानव विकास का आधार तत्त्व है, कर्म के माध्यम से विभिन्न ज्ञानी जन परम सिद्धि को प्राप्त हुए। इसी परिप्रेक्ष्य में जनकादि परम् ज्ञानी जानों का एक वृत्तान्त गीता में भी प्राप्त होता है–

''कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।[2]

और श्रेष्ठ पुरुष जिन–जिन आचरणों को व्यवहार में प्रयोग करता है, अन्य पुरुष भी वैसा ही आचरण करते हैं। इन पुरुषों द्वारा किया गया आचरण भविष्य के लिए प्रमाण बन जाता है।[3] इस कारण हमें हमेशा यह

* शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।

ध्यान रखना चाहिए हमारे द्वारा किया गया कर्म आगे आने वाली पीढ़ी के लिए अच्छा या बुरा दोनों हो सकते हैं अतः हमें केवल सद् कर्म करना चाहिए असद् कर्म नहीं।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है यदि अपने कर्मों में सावधानी न बरती जाय तो वह अनिष्ट के कारण बन जाते हैं इसी कारण योगीराज ने कहा यदि मैं स्वयं अपने कृत कर्मों में सावधानी न रखूँ तो अनर्थ हो जायेगा क्योंकि सम्पूर्ण संसार हमारा ही अनुसरण करता है।[4]

मानव निरन्तर भौतिक सुखों की खोज के लिए ही तत्पर रहता है। जिसके लिए वह सदसद् कर्मों का चिन्तन नहीं करता, परन्तु वेदों में कहा गया है कि सद् कर्मों को करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[5]

मनुष्य को अपना सामाजिक परिवेश स्वच्छ और पवित्र रखना चाहिए क्योंकि इसी से हमारा सबल विकास समभव है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए वैदिक ऋषि वाक्य हमें प्रेरणा देता है कि स्वच्छ वातावरण में ही सौ वर्ष तक जीने की कल्पना करनी चाहिए–

पश्येम् शरदः शतम् जीवेम् शरदः शतम्।[6]

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है, मनुष्य को बिना फल की इच्छा किये ही कर्म करना चाहिए क्योंकि कर्म पर ही हमारा अधिकार है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।[7]

धर्म ग्रन्थ को अविर्भूत करने वाले आचार्य मनु ने अपनी स्मृति ग्रन्थ में कहा है कि फल की कामना करना प्रशंसनीय है। परन्तु अपने कर्मों को छोड़कर नहीं इसलिए मनु ने कहा है जो भी वैदिक कर्म है उनको नित्य करना चाहिए–

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।।[8]

इस प्रकार कर्मयोग के आचरण से मनुष्य व्यक्तिगत आत्मोन्नति के साथ ही समस्त जनों की भी उन्नति को बढ़ाता है। क्योंकि एक आचारवान योगी के लिए कोई भी प्राणी उसका बैरी नहीं होता–

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।[9]

इसलिए गीता में कहा गया है इस संसार में प्रत्येक मनुष्य को बीज रूप में अपने कर्मों को बोना चाहिए।[10] कर्म समाज का एक ऐसा है जो सोते हुए समाज को नित्य जगाता रहता है उसमें नया साधन स्फुरण कर जोश भर उन्हें जागृत करता रहता है, उपनिषदों में कहा गया है–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।[11]

चार्वाकों का मत–

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।[12]

इस संसार में जब तक जियो मौज मस्ती से खाओ–पिओ और मस्त रहो ऐसे चर्वाक् मतावलम्बियों का एक कर्म योगी नित्य विरोध करता है, क्योंकि यह हमारे सामाजिक भविष्य के लिए उचित नहीं।

इसी कारण श्रीकृष्ण ने कहा है कर्म प्रधानता मानव का श्रेष्ठ कर्त्तव्य होना चाहिए। मानव का यह धर्म है कि सृष्टि चक्र के अनुकूल यदि अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वह आसक्ति या राग में ही लिप्त रहता है तो ऐसा मनुष्य पाप का भागीदार बनता है इस संसार में उसका जीना व्यर्थ है।[13]

इसलिए मनुष्य को राग–द्वेष से प्राप्त होने वाले दुःख और त्याग की भावना से उत्पन्न होने वाले सुख में भली प्रकार भेद समझ लेना चाहिए, क्या उचित है और क्या अनुचित है। इसी परिप्रेक्ष्य में महाभारत में भी कहा गया है कि राग के समान कोई दुःख नहीं और त्याग के समान कोई सुख नहीं–

नास्ति रागं समं दुःखं, नास्ति त्यागं समं सुखम्।[14]

इसलिए कर्मों के प्रति लगाव और आसक्ति का त्याग करने से समाज का सन्तुलन बना रहता है, ऐसा कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डालता क्योंकि मनुष्य कर्म करने के लिए विवश है–

''न हि कश्चिक्षणमापि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।''[15]

कर्म करने की विवशता इसलिए है क्योंकि गीता में कहा गया है कि जीव का स्वभाव कर्म है–

''स्वभावस्तु प्रवर्तते''[16]

जब मनुष्य अपने कर्त्तव्य पालन का निर्वहन नहीं करता तो धर्म की हानि अर्थात् जीवन मूल्यों का पतन होता है और सज्जनों के उद्धार तथा दुष्टों के दलन के लिए कोई महान शक्ति समाज में उभरकर समाज को संगठित एवं सन्तुलित करती हैं।[17] इस कारण हमारा भी कर्त्तव्य है कि हम अपने कर्मों को करें और सामाजिक उत्थान का कारण बनें।

कर्मयोग को दृढ़ करने के लिए उनका समय से पालन करने के लिए और समाज के आचरण को बनाए रखने के लिए पतंजलि ने यम–नियमों का उल्लेख किया है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।[18]

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि नियमाः[19]

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच यमों तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर और प्राणिधान इन पाँच नियमों के माध्यम से मनुष्य को कर्म करने में धैर्य, दृढ़ता और संयम बना रहता जिससे मनुष्य अपने कर्मों द्वारा अपने समाज का विकास कर देश का गौरव बढ़ाता है और सुखों का भोग करता है।

समाज को हमेशा मनुष्य से कर्म की अपेक्षा रहती है क्योंकि समाज का निर्माण मनुष्यों से होता है मनुष्य के द्वारा ही समाज का विकास या पतन होता है, परन्तु समाज को मनुष्य से उन्नत कर्म की ही अपेक्षा रहती है, इस कारण मनुष्य को नित्य सद् कर्म कर अपने सामाजिक परिवेश को उन्नत बनाना चाहिए। कर्मयोग एक ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य के विचारों और त्याग की भावनाओं पर अश्रित रहता है, क्योंकि कर्म के आधार पर ही मनुष्य को सुख, दुःख प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग का दर्पण है, जो सम्पूर्ण सृष्टि को एक ही सूत्र में बाँधती है। कर्म एक कड़ी की तरह है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जोड़ती है। इस कारण इस सृष्टि के प्रत्येक

मनुष्य का यह धर्म है, कर्त्तव्य है कि वह अपने समाज के लिए सद् कर्म करे। कर्म के विषय में प्रस्तुत भावनात्म शब्द–

पौरुष का गहन ताप पाकर, युग का फौलाद पिघलता है।
सच्चा प्रतिमान कर्म के ही सुन्दर सांचे में ढलता है।।
नैराश्य–निशा में कर्मठता को स्नेहिल दीपक जलता है।
यौवन के ज्योतिर्मय क्षण की सार्थकता कर्म कुशलता है।।

सन्दर्भ–

1. श्रीमद्भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 19, 23, 33, 37 42 पठनीय है।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/20
3. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त्तदेवेतरो जनः।
   स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते गीता 3/21
4. गीता, अध्याय तीन, श्लोक 22, 23, 24, 25 दर्शनीय है।
5. शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय 40/2
6. वैदिक वाक्य
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47
8. मनुस्मृति, 2/2
9. पतंजलि योगसूत्र, 2/35
10. बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
    तस्याद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् (गीता 2/50)
11. कठोपनिषद् वाक्य
12. चार्वाक दर्शन, 11
13. एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
    अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति गीता 3/16
14. महाभारत वाक्य
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/5
16. वही, 5/4

17. (क) यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् (गीता, 4/7)
(ख) पवित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे (गीता, 4/8)
18. पतजलि योग सूत्र, 2/30
19. वही, 2/32